प्रवचन-२०९, गाथा-१७९, श्लोक २९८-२९९, शुक्रवार, मगसर कृष्ण ८, दिनांक १०-१२-१९७१

...... आचार्य आरोहण तिथि है। मगसर कृष्ण अष्टमी अर्थात् ऐसे सिद्धान्त की पौष कृष्ण अष्टमी है। अपने ऐसे अष्टमी... आचार्य पद ३३ वर्ष में प्राप्त हुआ था। ग्यारह वर्ष में दीक्षा ली थी और ३३ वर्ष में आचार्य पद था। ९२ वर्ष में देह छूट गयी। आचार्य पद का आरोहण (दिवस) मगसर कृष्ण अष्टमी। अभी ये तीन हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। कुन्दकुन्द आचार्य का नाम तीसरे नम्बर पर आता है। गणधर के पश्चात् पूरे शासन के नायकरूप से उनको स्वीकार किया है। गणधर के पश्चात् ऐसी उनकी शक्ति। है न, देखो न! एक-एक लाईन, एक-एक पंक्ति शास्त्र की देखो तो ओहोहो! अलौकिक... आहाहा! केवलज्ञान के पथानुगामी हैं! उन्हें आचार्य पद तो कुदरती, सहज मिला है। ऐसी उनकी शक्ति थी, वह आचार्य पद (मिला)। मगसर कृष्ण अष्टमी। पन्द्रह वर्ष पहले मुम्बई गये थे। नहीं? कलाश्री में थे। नहीं? हरिभाई बाहर बैठे थे। नहीं? वह चणोथी न? चणोथी। पन्द्रह वर्ष पहले मुम्बई गये थे न? (संवत्) २०१३ के वर्ष में। मगसर कृष्ण अष्टमी वहाँ थी। जंगल में बाहर बैठे थे।

१- सतत अंतर्मुखाकार=निरन्तर अन्तर्मुख जिसका आकार अर्थात् रूप है ऐसे।

२- निरुपराग=निर्विकार; निर्मल।

* यातना=वेदना; पीड़ा। (शरीर वेदना की मूर्ति है।)

वे यह कुन्दकुन्दाचार्य, उनका यह बनाया हुआ नियमसार है। भगवान के पास जाकर, आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ... किसी जगह ऐसा आता है कि स्वयं को भगवान का विरह पड़ा, इसलिए भगवान के पास गये। किसी जगह ऐसा भी आता है कि कोई विचार श्रेणी में सूक्ष्म विचार में अन्दर बराबर समाधान नहीं हुआ, ध्यान में वहाँ 'पौन्नूर हिल' 'वन्देवास के निकट'। मद्रास से अस्सी मील इस ओर है। सूक्ष्म विचार में जरा... इसलिए एकदम जाने का विचार (आया) भगवान को नमस्कार किया और भगवान की ध्वनि में भी सद्धर्म वृद्धि अस्तु, ऐसा आया। अपने शब्द अन्तिम डाला है।

कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी साक्षात् भगवान के समवसरण में से श्रवण होकर आयी हुई है। उनके अनुभव में से। चारित्रसहित का अनुभव। प्रमत्त-अप्रमत्त में से झूलते थे। उसमें यह एक विकल्प आया और यह शास्त्र रच गया। ऐसा उन आचार्य का आरोहण पदवी का आज दिन है। पूजा की है न बहिनों ने? वहाँ पूजा की न? आदमी थे? अकेले? कितने थे? आदमी कितने थे? ऐसा मैं कहता हूँ।

मुमुक्षु : १५-२० व्यक्ति थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक।

१७९ गाथा। परम तत्त्व आत्मा त्रिकाली परम तत्त्व और परमात्मा सिद्ध, दोनों की अपेक्षा से बात चलती है।

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।१७९।।

दुख सुख नहीं पीड़ा जहाँ नहिं और बाधा है नहीं।
नहिं जन्म है, नहिं मरण है, निर्वाण जानों रे वहीं॥१७९॥

टीका : यहाँ, (परमतत्त्व को) वास्तव में सांसारिक विकारसमूह के अभाव के कारण निर्वाण है, ऐसा कहा है। दोनों अर्थ होते हैं। त्रिकाली आत्मतत्त्व निर्वाणस्वरूप ही है और सिद्ध है, वे वर्तमान पर्याय में निर्वाणस्वरूप हैं। यहाँ शैली ऐसी है न? जो कुछ पर्याय में होता है, वैसा उनका त्रिकाली द्रव्यस्वभाव होता है। ऐसी उसमें शैली है। इसलिए **(परमतत्त्व को) वास्तव में...** अर्थात् त्रिकाली वस्तु को **सांसारिक विकारसमूह के अभाव के कारण निर्वाण है, ऐसा कहा है।** नीचे थोड़ा स्पष्टीकरण किया है।

निर्वाण=मोक्ष; मुक्ति। [परमतत्त्व भगवान आत्मा विकाररहित होने से द्रव्य-अपेक्षा से सदा मुक्त ही है।] यह वस्तु जो आत्मा वस्तु है, वह वस्तु पदार्थ की अपेक्षा से तो मुक्त ही है। पदार्थ कहीं कोई बन्ध के, निमित्त के सम्बन्ध में पदार्थ आया नहीं। आहाहा! त्रिकाल निर्वाणस्वरूप ही भगवान है। निर्वाण अर्थात् पूर्ण शुद्ध, पूर्ण पवित्र, पूर्ण शान्ति का सागर, भगवान आत्मा है। उसमें से निर्वाण पद पर्याय की प्राप्ति होती है।

इसलिए मुमुक्षुओं को ऐसा समझना चाहिए कि विकाररहित परमतत्त्व के... अपना आत्मा विकाररहित त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से **परमतत्त्व के सम्पूर्ण आश्रय से ही...** ऐसा परमात्मा अपना त्रिकाली ज्ञायकभावरूप स्वभाव मुक्तस्वरूप, उसका जघन्य आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। विशेष आश्रय करने से चारित्र होता है। पूर्ण आश्रय करने से मुक्ति होती है। कहो, समझ में आया?

जिसमें मुक्तपना पड़ा है। त्रिकाल वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही है। ऐसे मुक्तस्वरूप में अन्दर में पूर्ण शान्ति, पूर्ण आनन्द ऐसे शीतलभूत, अकेला शान्त सागर का समुद्र पूरा भरपूर है। आहाहा! स्वयं शान्त सागर ही है। शान्ति-सागर। ऐसे स्वभाव का अन्तर आश्रय लेने पर उसे शान्ति का अंश समकितसहित प्रगट होता है। उसे अपनी शान्ति शोधने के लिये बाहर में कहीं जाना पड़े, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। उसमें सुख का सागर है। सुख का भरपूर सागर भरा है। आहाहा! वस्तु है न? अस्ति है न? अरूपी परन्तु पदार्थ है न? पदार्थ है तो उसका भाव है न? भाव है तो वह परिपूर्ण भाव है। आनन्द, ज्ञान, दर्शन, शान्ति इत्यादि परिपूर्ण भाव पड़ा है। उसका अन्तर आश्रय लेने से धर्म की-शान्ति की, स्वच्छता की, पवित्रता की प्रगट दशा होती है, उसे यहाँ शुरुआत का सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहने में आता है।

सम्पूर्ण आश्रय से ही... ऐसा शब्द है न? **सम्पूर्ण आश्रय से ही अर्थात् उसी के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण से...** जिसमें पूर्णता शान्ति और आनन्द ऐसा तत्त्व भरपूर है। उसके आश्रय से, उसकी श्रद्धा से, उसके ज्ञान से और उसमें रमणतारूप आचरण से। **वह परमतत्त्व अपनी स्वाभाविक मुक्तपर्याय में परिणमित होता है।** अपने स्वरूप की पूर्णता के आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की परिणति होने पर वह परमतत्त्व जो स्वाभाविक मुक्तस्वरूप है, वह मुक्त पर्याय से परिणमता है। समझ में आया? यह उसकी मुक्ति होने

की क्रिया। सुखी होने का पन्थ यह है। आहाहा! अन्तर में आनन्द से भरपूर भगवान, जिसका सत्त्व आनन्द है, उसका आश्रय करने से सुख के पन्थ में जाया जाता है। पूर्ण आश्रय करने से पूर्ण सुखी हो जाता है। कहो, समझ में आया?

सतत अन्तर्मुखाकार परम-अध्यात्मस्वरूप में लीन ऐसे उस निरुपराग-रत्नत्रयात्मक परमात्मा को... सिद्ध भगवान भी ऐसे हैं और त्रिकाली तत्त्व भी ऐसा है। सिद्ध भगवान की पर्याय की बात, त्रिकाल में द्रव्य की बात। समझ में आया? **सतत अंतर्मुखाकार =निरन्तर अन्तर्मुख जिसका आकार अर्थात् रूप है...** एक समय की पर्याय में अन्तर्मुख तत्त्व नहीं आता। पूरा तत्त्व नहीं आता। एक समय की पर्याय आवे, वह अलग बात है। अन्तर्मुख तत्त्व पूरा, त्रिकाल अन्दर द्रव्यस्वभाव जिसका स्वरूप है। **परम-अध्यात्मस्वरूप में लीन...** है वह तो। भगवान आत्मा अपने अध्यात्म अर्थात् अपना स्वभाव, उसमें लीन है। **ऐसे उस निरुपराग-रत्नत्रयात्मक... निर्विकार; निर्मल।** ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप **परमात्मा को...** त्रिकाली को भी और सिद्धपर्याय को भी। समझ में आया? आहाहा! और जो सिद्ध में नहीं है, वह यहाँ आत्मा में ही नहीं है। सिद्ध में है, वह यहाँ आत्मा में है। कहो, समझ में आया?

अशुभ परिणति के अभाव के कारण... भगवान आत्मा को अशुभ पर्याय ही नहीं। सिद्ध को नहीं और द्रव्यस्वभाव में भी नहीं। अशुभपरिणति। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, शुभ-अशुभभाव, ऐसी जो अशुभपरिणति। यहाँ अकेली अशुभ ली है। उसमें अशुभकर्म नहीं है। अशुभपर्याय नहीं है अर्थात् अशुभकर्म नहीं है और अशुभकर्म के अभाव के कारण दुःख नहीं है। भगवान आत्मा में वह अशुभपरिणति नहीं है। इसलिए अशुभकर्म नहीं है, इसलिए उसे दुःख नहीं है। सिद्धपर्याय में भी अशुभपरिणति नहीं है, इसलिए अशुभकर्म नहीं है, इसलिए उन्हें दुःख नहीं है। आहाहा!

शुभ परिणति के अभाव के कारण... शुभपरिणति दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा— ऐसे जो शुभभाव, उनकी **परिणति के अभाव के कारण शुभकर्म नहीं है...** त्रिकाली द्रव्यस्वभाव में भी शुभकर्म नहीं है और सिद्धपर्याय को भी शुभपरिणति नहीं है। इसे शुभकर्म नहीं है। **शुभकर्म के अभाव के कारण वास्तव में संसारसुख नहीं है;...** यह संसारी सुख कहते हैं न? वह सब दुःख है। कोई शुभपरिणति हो तो उसे शुभकर्म बँधते

हैं और उसके कारण यह बाहर के संयोग मिलते हैं और उसमें माने कि हम सुखी हैं। सुख कहाँ था संसार में ? धूल भी नहीं। मानता है। यह अमेरिकन सब सुखी हैं। ऐ..! माणिकलाल! तुम्हारा भतीजा कहता है, भाई! इस अमेरिका में लोग बहुत सुखी हैं। कहा, धूल भी कहीं सुख नहीं है। सुख तो आत्मा में है। ऐसा कि यहाँ सब साधारण लोग लगते हैं। पाँच-पचास हजार की पूँजी या किसी को नहीं। वहाँ तो बड़े-बड़े बँगले, बड़े शहर और हिन्दुस्तान से भी बड़ा देश और सब बड़े टोपा पहनते हैं। बड़ी लाख-लाख दो-दो लाख की मोटरें हॉर्न बजाती है और नीचे संगमरमर की सड़कें।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ होगी, लो न! ऐसा सुना हुआ हो कहीं। संगमरमर की सड़क ऐसी, उस पर मोटर चलती है। उसे एक मिनिट में एक मील चलना पड़ता है। कम करे तो दण्ड पड़ता है।

मुमुक्षु : ट्रेफिक रुक जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ सब चलता हो, उसमें सबको रुकना पड़े। एकदम चलो, एकदम चलो। कुत्ते की तरह चलो। मुम्बई भी ऐसा ही है न। मुम्बई में क्या है ? घोड़े की तरह दौड़ते हैं, कुत्ते की तरह भोंकते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बात सच्ची है। लोग भी कहते हैं। आहाहा!

भगवान की आत्मनगरी, अन्तर आत्मनगर निरुपाधिनगर। यह उपाधि मुम्बई। श्रीमद् में मोहमय नगरी कही है न ? आहाहा! यह तो निरुपाधिनगरी। भगवान आत्मा अनन्त आनन्दादि शक्तियों का सागर भगवान, जिसमें नजर करने से आनन्द हो, जिसका आश्रय लेने से शान्ति मिले, ऐसी आत्मनगरी, वह नगर है। उसका आश्रय करनेवाला सुखी है। बाकी सब दु:खी हैं। सब जल रहे हैं। यह भी माँस खाये, शराब पीवे और ऐसा करे फिर भी बाहर सुखी दिखे। ....भाई! कहो, माँस खाये, शराब पीये और सुखी दिखे। सुखी है कहाँ ? बाहर के संयोग की अनुकूलता से कहीं सुख है ? अनुकूलता मानता है। अनुकूलता ज्ञेय है, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। जानता है कि यह मुझे ऐसा बस। परन्तु अन्त में... आता है। लेख में आता है। कल आया था। वे लोग भी अब थककर अध्यात्म शान्ति

लेना चाहते हैं। हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... समाचार-पत्र में आया है, कल ही आया है। अमेरिकावाले कितने ही सिर मुँडाकर और भगवा वस्त्र पहनकर हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... ऐसा मथते हैं अब। इस पैसे-बैसे में धूल में कुछ नहीं है। उसमें कल ही आया है।

मुमुक्षु : इसमें से एक वर्ग हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो मुम्बई में आये हैं न कितने ही अमेरिका के। लोग इकट्ठे होते हैं। आहाहा! वे लोग ही हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... हाथ में तम्बूरा और (गोरी) चामड़ी कुछ दूसरी होती है। विलायती होती है और अंग्रेजी बोलते होते हैं, उसमें कुछ ऐसा बोलते हैं। इसलिए ओहोहो! एक मण्डल निकला है। उसमें लाखों लोग हैं। कल उस वीरवाणी में आया है। अरे! उसमें कहीं धूल भी नहीं है। हरे कृष्ण में भी नहीं है।

कर्म कृषे, सो कृष्ण कहिये। कर्म को टाले, वह कृष्ण। यह तो आत्मा स्वयं कृष्ण है और पाप का अघ हरित इति हरि। पाप के अघ को टाले, वह हरि, वह आत्मा हरि है। दूसरे होवे तो हरि और कृष्ण होवे तो उनके। इसका हरि कृष्ण तो आत्मा है। इसकी जिसे खबर नहीं, वे सब किसी के भजन करें, वे सब दुःखी होनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपना भजन। अपने नहीं आया था? जिसे भजता है, उसे भज। ७७ में आया था। जिसे तू भज रहा है, उसे भज। आहाहा! १७७ कलश, अन्तिम कलश। २९६ कलश।

आनन्दसागर आत्मा को तू भज रहा है, कहते हैं। उसका भजन, उसकी एकाग्रता तो कर रहा है। अब इसे भज, बस! आहाहा! पूर्णानन्द की प्राप्ति का वह उपाय है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। कहते हैं कि यह संसार सुख कल्पना का अज्ञानी ने माना हुआ। अरबों रुपये, बड़े महल और धूल में भी नहीं। आकुलता से पीड़ित हो बेचारा। कहीं शान्ति नहीं है। नींद के लिये गोलियाँ लेनी पड़ती हैं। इतनी तो संकल्प-विकल्प की खलबलाहट।

मुमुक्षु : नशा करे तो नींद आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो नशे की बात है। उसमें यह निद्रा कहाँ थी? आहाहा! जिसे निद्रा में भी निद्रा का सुख नहीं, उसे आत्मा का सुख तो कहाँ से होगा?

भगवान आत्मा प्रभु पूर्णानन्द का मन्दिर प्रभु आत्मा, उसमें जा न, देवदर्शन कर न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आगे कहेंगे, आनन्द मन्दिर आत्मा। ऐसा आनन्द मन्दिर प्रभु है।

उस मन्दिर में अन्दर देवदर्शन कर। समझ में आया? उस देवदर्शन से तुझे आनन्द होगा, ऐसा कहते हैं। तेरा देव तू, हों! तू। भगवान के देवदर्शन में भी शुभभाव। वह दुःख। गजब! कहो, समझ में आया? भगवान को तो वास्तव में सांसारिक सुख है नहीं। इतने तो वे दुःखी हैं न तब? सांसारिक सुख नहीं, इन्द्रिय का ज्ञान नहीं। नहीं आता परमात्मप्रकाश में? इन्द्रिय का ज्ञान नहीं, इतने वे दुःखी हैं। अज्ञान है। वह तो कहने के लिये (बात है)।

यहाँ कहते हैं कि **पीड़ायोग्य यातनाशरीर के अभाव के कारण...** क्या कहते हैं? यह शरीर कैसा? कि यातनाशरीर। वह तो पीड़ा-वेदना की मूर्ति है। भाषा क्या है? देखो! **पीड़ायोग्य यातनाशरीर...** पीड़ा के योग्य वह शरीर है अर्थात् वह वेदना की मूर्ति है। आहाहा! ऐसी वेदना की मूर्ति ऐसा... नीचे स्पष्टीकरण किया है, देखो! **वेदना; पीड़ा। (शरीर वेदना की मूर्ति है।)** पाठ है न? **पीड़ायोग्य यातनाशरीर...** पीड़ा के योग्य यातना का शरीर। दुःख का शरीर दुःख मूर्ति है। उसमें कुछ ठीक नहीं पड़ता। इसलिए कठिन काम है। पोपटभाई! हसमुख को हुआ था देखो न! अन्तिम। ऐसा सपना आता है। महाराज! ऐसा सपना आता है। बुरा सपना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे वह स्थिति थी। उसे ऐसा हो गया कि महाराज आये, मेरा रोग दूर हुआ। बड़ा भाई हसमुख। कहीं यन्त्र चढ़ गया है। निहालभाई वहाँ आ गये। हो गया। लाईन पर चढ़ गया है। निहालभाई आये हैं न। मुम्बई आये हैं। चढ़ाकर आये हैं। आनेवाले हैं। वे आनेवाले हैं न तुम्हारे? इनके रिश्तेदार हैं....

आनन्द के सागर को अनुभव और यह भोजन कर भाई! तेरा भोजन कम नहीं पड़ेगा, ऐसा वह भण्डार है। यह भोजन तो खत्म हो जाएगा। आनन्द मन्दिर प्रभु... आहाहा! थोड़ा भी बहुत लिखा जानना इसमें। तेरा नाथ आनन्द का सागर भगवान... अरे... इसके पास तू जा न! वहाँ तुझे आनन्द मिलेगा। शरीर और कुटुम्ब और यह जहाँ-तहाँ भटका भटक करता है, कहते हैं। वह सब दुःख का रास्ता, आकुलता के फोड़े की वह पीड़ा है। कहो समझ में आया? ऐसा **पीड़ायोग्य यातनाशरीर के अभाव के कारण...** वेदना की मूर्ति। भाई ने ऐसा लिखा है। श्रीमद् ने।

मुमुक्षु : नीचे लिखा है इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें तो लिखा है परन्तु श्रीमद् ने लिखा है। यह शरीर वेदना की मूर्ति है। आहाहा! सांस ठीक से नहीं चले वहाँ चिल्लाहट (मचती है)। पेट में कुछ सांस चले वहाँ चिल्लाहट, याद करे वहाँ चिल्लाहट, अटके वहाँ चिल्लाहट।

एक महिला थी। पोरबन्दर, (संवत्) १९८७ में आये तब। साढ़े तीन वर्ष तक ऐसे उल्टी पड़ी रही। इतनी पीड़ा... इतनी पीड़ा...। ...ऐसे सोवे तो पीड़ा का पार नहीं होता। साढ़े तीन वर्ष तक उल्टे सिर। अन्दर पेट में ऐसा कुछ होवे तो वहाँ ऐसा होवे। तो बहुत न हो। आहाहा! बोलती महिला हो, मांगलिक और मन्दिरमार्गी की। साढ़े तीन वर्ष से यह पीड़ा है ऐसी की ऐसी। पीड़ित हूँ...

मुमुक्षु : बड़े डॉक्टर...

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर धूल करे। सब डॉक्टर मर जाते हैं। डॉक्टर चले जाते हैं। उसमें डॉक्टर क्या करता? आहाहा! नवनीतभाई ने कहा नहीं था? वहाँ हम गये (तब) पहले ही कहा था कि दवा और हवा से। नवनीतभाई! पहले दिन इस दवा से और हवा दोनों से... दवा से उकतावे। सब दवा विरुद्ध पड़ी। जितनी ले उतनी विरुद्ध। भाई ने कहा था पहले दिन, दसवीं के दिन, आसोज कृष्ण दसवीं। पहले वहाँ आये थे न? दो महीने हुए। दो दिन कम। आसोज दसवीं को गये थे। दसवीं को गये थे। पहले ही बोले थे। यहाँ की दवा और हवा... आहाहा!

आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान है। जहाँ है, वहाँ तूने कभी नजर नहीं की और जहाँ नहीं है, वहाँ नजर को रोका है। आहाहा! समझ में आया? वे सब सुखी नहीं है। अमेरिकन सुखी नहीं, काठियावाड़ी सुखी नहीं। सवेरे भाई कहते थे।.... वहाँ सब सुखी कैसे होंगे? धूल भी सुखी नहीं हैं। गोरी चमड़ी और कुछ बड़ा बँगला, इसलिए सुखी हो गये? आहाहा! अरे रे! सड़े हुए गधे के चमड़े में मैसूरपाक लपेटा हो, वैसे यह भगवान आनन्दमूर्ति शरीर के चमड़े के संयोग में लिपटा हुआ दिखता है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं **पीड़ायोग्य यातनाशरीर के अभाव के कारण पीड़ा नहीं है;...** भगवान आत्मा में पीड़ा नहीं है और सिद्ध की पर्याय में भी पीड़ा नहीं है। दोनों बातें यहाँ लागू पड़ती हैं। आहाहा! कहो, सुख होगा या नहीं अब यहाँ? ऐई! गुलाबचन्दभाई! वहाँ तुम छह भाई इकट्ठे थे। कितना बड़ा गाँव... पाँच-पाँच, छह-छह लाख रुपये एक-एक के

पास। बीस-पच्चीस लाख। बड़ी इज्जत, लम्बा नाक। ऐसा सुना हुआ है। लोग तुम्हारी बात... आहाहा! धूल भी नहीं है वहाँ। दु:ख का समुद्र है। छोटूभाई को यहाँ ही श्वास था न? दमा था न? सुना था। सब खबर है। श्वास-दमा। अरे! भगवान! यह तो वेदना की मूर्ति है। यह दु:ख की मूर्ति है। प्रभु आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसकी खबर नहीं होती। निजनिदान दबा पड़ा है, उसकी इसे खबर नहीं है। आहाहा!

असातावेदनीयकर्म के अभाव के कारण बाधा नहीं है;... असातावेदनीय नहीं है, इसलिए उन्हें प्रतिकूल संयोग नहीं है। किसे? आत्मद्रव्य को और सिद्ध की पर्याय को, दोनों को। आहाहा! **पाँच प्रकार के नोकर्म के अभाव के कारण...** पाँच प्रकार के नोकर्म। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, भाषा और मन, ऐसे **अभाव के कारण मरण नहीं है;** .... नोकर्म हैं न? उपरोक्त पाँच शरीर नहीं हैं। नोकर्मरहित है। समझ में आया? औदारिकशरीर नहीं है, वैक्रियिकशरीर नहीं है, आहारकशरीर नहीं है, भाषा और मन नहीं है। आहाहा! उनके अभाव के कारण मरण नहीं है। नोकर्म आता है, अर्थ में आता है न! अपने यह नहीं? ५० से ५५ गाथा (समयसार)। उसमें आता है न?

मुमुक्षु : ..... समयसार में २९ बोल का कचरा, उसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार। यह तो प्रवचनसार है। समयसार है। इसमें इन्होंने पाँच लिये हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, भाषा और मन। ऐसा लिया है। कार्माण नोकर्म में नहीं जाता न इसलिए। क्या आया? कितने में आया यह? इसमें लिखा है। यह आया। **जो छह पर्याप्तियोग्य और तीन शरीरयोग्य वस्तु (-पुद्गलस्कन्ध) रूप नोकर्म है, वह सर्व ही जीव का नहीं है...** छह पर्याप्तियोग्य नहीं है, नोकर्म। छह पर्याप्तियोग्य डाला न, उसमें नोकर्म डाला है। है वह। चौदहवाँ बोल है। **छह पर्याप्तियोग्य और तीन शरीरयोग्य वस्तु (-पुद्गलस्कन्ध) रूप नोकर्म है, वह सर्व ही जीव का नहीं है...** वहाँ उन्होंने उन तीन शरीरों को नोकर्म डाला है। इसलिए उन्होंने-शीतलप्रसाद ने नोकर्म यहाँ डाला है। औदारिक, आहारक, वैक्रियिक, भाषा, मन, इसमें आया है न? पाठ है। **'यत्षट्पर्याप्तत्रि-शरीरयोग्यवस्तुरूपं नोकर्म तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य,'** जीव में वह है नहीं। इसमें तो चिह्न किये हों न! यह तो नयी पुस्तक है न?

आत्मा में भाषा नहीं, मन नहीं, और तीन शरीर नहीं। नोकर्म की अपेक्षा से। वह

कार्माणशरीर नोकर्म नहीं है और सिद्ध में भी नहीं है। औदारिक नहीं, वैक्रियिक नहीं, आहारक नहीं और भाषा तथा मन नहीं।

पाँच प्रकार के नोकर्म के हेतुभूत... इन पाँच प्रकार का जो नोकर्म, उसका कारण **कर्मपुद्गल के स्वीकार के अभाव के कारण जन्म नहीं है।** इस आत्मा को जन्म नहीं, सिद्ध को जन्म नहीं। आत्मा जन्मता है? **ऐसे लक्षणों से लक्षित, अखण्ड, विक्षेपरहित परमतत्त्व को सदा निर्वाण है।** वहाँ यह सदा शब्द प्रयोग किया है न, इसलिए जरा **विक्षेपरहित परमतत्त्व को सदा निर्वाण है।** त्रिकाल द्रव्य को भी सदा निर्वाण और सिद्ध पर्याय भी जब से हुई, तब से सदा निर्वाण है। शीतलभूत, शीतलीभूत शान्ति। अकेली शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषाय की शान्ति। आहाहा!

अकषाय की शान्ति, कषाय की अशान्ति। जितनी कषाय शुभ-अशुभ विकल्प, वह सब अशान्ति। उससे रहित अकषाय की शान्ति, वह जीव में है और सिद्ध में है। अन्दर में था तो वह शान्ति की पर्याय आयी, ऐसा कहते हैं। कहीं शान्ति की पर्याय बाहर से नहीं आती। सिद्धपर्याय वह अकषायभाव है। वह अकषायभाव स्वभाव में था, वह पर्याय में आया? द्रव्य और पर्याय के बीच खेल है। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

शरीर में रोग आवे और जरा ऐसे चार-छह महीने (खिंच जाए) तो कायर हो जाए, कायर। छह महीने, आठ महीने, बारह महीने। बारह-बारह वर्ष। अब तो यह शरीर छूट जाए। इसे किसकी पीड़ा है? देह में एकत्वबुद्धि की। पीड़ा दूसरी कोई चीज़ नहीं है। आनन्द में राग को एकत्व माना, वह पीड़ा और दुःख है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सदा निर्वाणस्वरूप भगवान और पर्याय में सिद्ध निर्वाणस्वरूप, वह जीव को साध्य है। निर्वाण प्राप्ति करना वह (साध्य है) और उसका साधन त्रिकाली द्रव्य का आश्रय करना, वह है। आहाहा!

श्लोक-२९८

[अब इस १७९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

भवभवसुखदुःखं विद्यते नैव बाधा,
जननमरणपीडा नास्ति यस्येह नित्यम्।
तमहमभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि,
स्मरसुखविमुखस्सन् मुक्तिसौख्याय नित्यम्।।२९८।।

(वीरछन्द)

भव भव के सुख दुःख नहीं होते हैं इस जग में जिसको।
जन्म-मरण अरु पीड़ा, बाधा भी न रहें परमातम को॥
मुक्ति सौख्य की प्राप्ति हेतु मैं काम सुखों से विमुख हुआ।
नित्य नमूँ स्तवन करूँ सम्यक् प्रकार से मैं उनको॥२९८॥

[श्लोकार्थः—] इस लोक में जिसे सदा भवभव के सुख-दुःख नहीं हैं, बाधा नहीं है, जन्म, मरण और पीड़ा नहीं है, उसे (-उस परमात्मा को) मैं, मुक्तिसुख की प्राप्ति हेतु, कामदेव के सुख से विमुख वर्तता हुआ नित्य नमन करता हूँ, उसका स्तवन करता हूँ, सम्यक् प्रकार से भाता हूँ।२९८।

श्लोक - २९८ पर प्रवचन

२९८ कलश। **[अब इस १७९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:]**

भवभवसुखदुःखं विद्यते नैव बाधा,
जननमरणपीडा नास्ति यस्येह नित्यम्।

तमहमभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि,
स्मरसुखविमुखस्सन् मुक्तिसौख्याय नित्यम्।।२९८।।

श्लोकार्थ : इस लोक में जिसे सदा भवभव के सुख-दुःख नहीं हैं,... इस लोक में जिसे सदा त्रिकाली भगवान आत्मा, उसे सुख-दुःख नहीं है। भव-भव के सुख-दुःख नहीं है। नारकी और तिर्यंच का दुःख। मनुष्य और देव का दुःख। यह दोनों पीड़ावाले सुख-दुःख आत्मा में नहीं है। इसी तरह सिद्ध की पर्याय में भी नहीं है। यहाँ चारों गति को तो दुःखरूप लिया है। आहाहा! **बाधा नहीं है,...** भगवान को बाधा नहीं है। पूर्णानन्द प्रभु द्रव्य को क्या बाधा होगी? वह तो ज्ञान और आनन्द किले में स्थित है। इसमें दूसरे का प्रवेश कहाँ से होगा? ऐसा भगवान आत्मा बाधारहित है। इसी प्रकार सिद्ध की पर्याय को भी बाधा नहीं है।

जन्म, मरण और पीड़ा नहीं है,... भगवान आत्मा को जन्म नहीं, आत्मा जन्मता नहीं, मरता नहीं, पीड़ा नहीं। ऊपर सब आया था न? **उसे (-उस परमात्मा को) मैं,...** ऐसा मेरा परमात्मस्वरूप, उसे मैं **मुक्तिसुख की प्राप्ति हेतु,...** पूर्ण आनन्द की दशारूप मुक्ति, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की अवस्थारूप मुक्ति, ऐसे मुक्ति शुद्ध की प्राप्ति के लिये **कामदेव के सुख से विमुख वर्तता हुआ...** अस्ति-नास्ति की है। पाँच इन्द्रिय के विषयभोग के काम की वासना, ऐसा जो कामदेव का सुख। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के झुकाव में कल्पना का कामदेव का सुख। आहाहा! उससे विमुख वर्तता हुआ। इन्द्रियों के भोग की वासनारूपी दुःख से विमुख वर्तता हुआ और भगवान आत्मा के सन्मुख वर्तता हुआ, **नित्य नमन करता हूँ,..** पूर्णानन्द प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर—समुद्र, उसे विषयसुख के भाव से विमुख होता हुआ, उसे मैं नमन करता हूँ। लो, यह धर्म। आहाहा! और उस मुक्ति के सुख के लिये ऐसा करता हूँ, ऐसा कहते हैं। उसका फल मुक्तिसुख है। कहो, समझ में आया?

मुक्तिसुख की प्राप्ति हेतु,... मुक्ति है न? **कामदेव के सुख से विमुख वर्तता हुआ...** विषय के सुख, कामदेव के सुख, भोग, वह तो जलहल, हलाहल जहर है। आहाहा! उसके सुख से विमुख होकर **विमुख वर्तता हुआ...** नित्य भगवान आनन्दमूर्ति को नमन करता हूँ। ओहोहो! मेरा नमन और झुकाव त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु आत्मा में है, कहते

हैं। आहाहा! धर्मी का नमन और झुकाव त्रिकाली भगवान के सन्मुख होता है। समझ में आया? यह अन्तर की बातें जिसे बैठना कठिन पड़े न, वह कहता है – यह क्या होगा?

तू अन्दर महा भगवान है। यह बाहर के कामदेव के शिष्य से तू विमुख है। समझ में आया? इस कामदेव के सुख से विमुख होकर अन्दर में जा। आहाहा! उसे मैं नित्य नमन करता हूँ। मेरा झुकाव एक समय भी द्रव्य के नमन के अतिरिक्त समय मेरा एक नहीं है। आहाहा! इन व्यवहार के विकल्प को नमता हूँ, वह भी मेरा स्वरूप नहीं है। नमता ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! भगवान ध्रुव नित्य वज्र। सुख का वज्रबिन्दु प्रभु, उसमें मेरा नित्य झुकाव है। उसमें ही मेरा त्रिकाल आश्रय है। मुझे त्रिकाली का आश्रय है, त्रिकाल-कायम। आहाहा! ऐसे आत्मा को नित्य नमन करता हूँ। शब्द थोड़े, भाव बहुत। समझ में आया? इसका स्तवन करता हूँ। इस त्रिकाली आनन्दमूर्ति का मैं तो स्तवन करता हूँ। भगवान का स्तवन और राग का स्तवन, वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! ऐसा आत्मा न जँचे, जिसे सर्वज्ञपने की पर्याय नहीं जँचती, अरे रे! तू ऐसा आत्मा नित्यानन्द सर्वज्ञस्वभावी तो त्रिकाल है। वह सर्वज्ञ की पर्याय प्रगट करने के लिये मैं सर्वज्ञस्वभाव में ही स्तवन करता हूँ। उसका स्तवन करता हूँ। आहाहा! सर्वज्ञस्वभावी का ही मैं आदर करता हूँ। क्योंकि सर्वज्ञपर्याय प्रगट करने के लिये (ऐसा करता हूँ)। समझ में आया? अरे रे! ऐसे आत्मा को ऐसा कहना कि सर्वज्ञपना नहीं होता। लोगों ने रच दिया है। मान-मर्यादा को। पण्डितजी! आन, आया न आन? आन-मर्यादा कहा न? संस्कृत टीका में, हिन्दी शब्दकोश में से शाम को निकाला था। मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा। भाई ने प्रतिष्ठा बहुत की। मनुष्य की प्रतिष्ठा बहुत कर डाली, ऐसा कहते हैं। मान बहुत दे दिया। आहाहा! अरे! भगवान! क्या कहता है। भाई! आहाहा! इस स्वभाव की मूर्ति को बहुत मान दिया। भाई! ऐसा नहीं है। वह उसका स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

यहाँ तो एक समय की पर्याय में जो कुछ सर्वज्ञस्वभाव में नमकर प्रगट हुई, उसके समक्ष तो कहते हैं कि अभी अनन्त गुना क्षेत्र और काल होता, जिसका स्वभाव ही जानने का है, उसे न जानने की बात उसमें कैसे आवे? ऐसी सर्वज्ञ की पर्याय है, उस पर्याय के लिये, वह पर्याय प्राप्त करने के लिये, जिसमें पूर्ण सर्वज्ञस्वभाव पूर्ण पड़ा है, उसे मैं नमन और स्तवन करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह स्तवना। लो! यह स्तुति, स्तुति।

'**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' यह स्तुति कही न? भगवान ज्ञानस्वभावी... आहाहा! वह ज्ञानस्वभाव अर्थात् परिपूर्ण स्वभाव। पर से अधिक अर्थात् भिन्न भाव। पाँच इन्द्रियाँ, जड़ और खण्ड-खण्ड तथा उनके बाह्य विषय, इन सबको-तीनों को इन्द्रिय गिनकर उनसे अधिक अर्थात् भिन्न भगवान, ज्ञानस्वभाव पृथक्। उसे अपूर्ण कहना और उसकी सर्वज्ञपर्याय नहीं होती... गजब करता है, भाई! तू प्रभु को पामर गिनकर गाली देता है। आहाहा! अरे! ऐसे माननेवालों को ढूँढ़-ढूँढकर डाला। अरे! ऐसा माननेवाली पूरी दुनिया अज्ञानी है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रतिष्ठावाले लोगों को...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिष्ठा किसकी? सभी मूढ़ता। आहाहा! मूर्खाई की प्रतिष्ठा की। बात सच्ची।

भाई! ऐसा ज्ञानस्वभाव से अधिक। राग और खण्ड इन्द्रिय और भगवान की वाणी से भी अधिक। अधिक अर्थात् भिन्न। ऐसा परिपूर्ण परमात्मा, उसकी एकाग्रता, वह उसकी स्तुति है। आहाहा! देवीलालजी! तब और ऐसा सुनकर (कहता है कि) देखो! इसमें तो तुम ऐसा कहते हो। और फिर मन्दिर और भगवान की स्तुति कहाँ डालते हो? ऐसा कोई कहता है। अरे! भगवान! वह तो अन्दर में स्थिर नहीं हो सके, तब बाहर के परमात्मा का बहुमान का विकल्प आता है। यहाँ का बहुमान है, उसमें स्थिर न रह सके, तब प्राप्त हुए के प्रति बहुमान आता है। ऐसा शुभविकल्प होता है। वह उपचार स्तुति है।

मुमुक्षु : विकल्प न आवे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : न आवे, ऐसा रहता नहीं। समझ में आया? अपने से गुण में अधिक दशावन्त का विनय करने का भाव, इस ओर विनय ढला है, उसमें बाकी रही चीज़ में पूर्णता को प्राप्त के प्रति विनय आये बिना रहता नहीं। है वह शुभभाव। समझ में आया? वह व्यवहार है, वह निश्चयस्तुति नहीं है। निश्चयस्तुति आत्मा के... और परन्तु पूर्ण हुआ नहीं, इसलिए आती है। और करता है, ऐसा भी कहा जाता है। करता है, भगवान की स्तुति करता है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा... आहाहा! परन्तु क्या टीका! पाठ और टीका में तो अमृत की रेलमझेल की है। अमृत का सागर उछाला है।

मुमुक्षु : भाषा पूरी मिली नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा पूरी मिली नहीं, भाई ने लिखा। भाषा पूरी मिली नहीं। ऐसे मुनि के लिये यह कहना कि बराबर समझे नहीं। टीका में ऐसा कहा। अरे! भगवान! तू क्या करता है? बापू! तेरी परमात्मदशा का अनादर होता है, अस्तुति होती है।

धर्मी को अपने पूर्ण स्वभाव की रुचि के अतिरिक्त कहीं रुचि जमती नहीं। समझ में आया? यह विषय की वासना का विकल्प हो, अरे रे! वह तो जहर है। इसलिए कहा है न, कि उससे विमुक्त वर्तता हुआ। समझ में आया? विमुख वर्तता हुआ तो सब छोड़ दे न? किसी समय ऐसा विकल्प आता है, वह तो मिथ्यादृष्टि हो गया तू। ऐसा नहीं। भगवान! तू सुन! समझ में आया?

इस अमृत के सागर को दृष्टि में रखकर स्थिर नहीं रह सकता, उसमें कोई भाव आता है परन्तु उसमें उसका रस नहीं होता। धर्मी को राग में राग का रस नहीं होता। आहाहा! रस नहीं होता तो फिर आता किसलिए है? अरे! भगवान! भाई! वह तो राग भले हो। हो परन्तु वह तो दोषरूप से बीच में आता है। (तो कहता है) नहीं लाना। परन्तु नहीं लाना, बापू! पूर्ण साधक नहीं है, पूर्ण आश्रय जहाँ नहीं है, वहाँ पूर्ण साधक नहीं है, वहाँ वह बीच में बाधकपना होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का (है)। सत्यस्वरूप ऐसा ही है। उसे निश्चय न समझे, व्यवहार में... आहाहा! बापू! तेरा काल कहाँ अटकेगा? जन्म-जरा-मरण का अन्त लाने का छोर तो यह आत्मा अन्दर है। उसका स्तवन करता हूँ अर्थात् जरा स्तवन में आया। व्यवहार को स्तवन नहीं करता, ऐसा कहते हैं। बीच में आता अवश्य है, परन्तु इसमें रस नहीं है। समझ में आया?

सम्यक् प्रकार से भाता हूँ। मेरे भगवान को ही मैं भाता हूँ। आहाहा! मेरा नाथ, पूर्ण आनन्द का नाथ है। वह कामदेव के सुख की विस्मयता, आश्चर्यता, पाँच इन्द्रिय के भोग की ओर की अतिशयता, आसक्ति, विस्मयता को छोड़ देता हूँ। आहाहा! विस्मयस्वरूप तो मेरा आनन्द है। धर्मी को यह होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यक् प्रकार से, ऐसा है न? '**समभावयामि... समभावयामि**' है न? '**समभावयामि**' मेरा नाथ आत्मा पूर्णानन्द का प्रभु अस्तिरूप विराजमान है, वह मैं हूँ। उसकी मैं भावना करता हूँ। सम्यक् प्रकार से उसमें एकाग्र होता हूँ, वही मेरे धर्म का आचरण है। आहाहा! भारी कठिन। दुनिया को ऐसा लगता है कि यह क्या? अकेला निश्चय लगाया है। देखो न! बीच में

व्यवहार से बात तो की है। वह की है इतनी उत्साह की बात नहीं है। '**भावयामि**' की नहीं है। पण्डितजी! '**समभावयामि**' की नहीं है। होता है। एक है कि बीच में व्यवहार आता है। आता है न? इससे वह सम्यग्दृष्टिपना मिट जाता है, सम्यग्ज्ञान मिट जाता है, ऐसा नहीं है। उसके अन्तर के आदर में कुछ भी विघ्न पड़ता है, ऐसा नहीं है। आदर तो उसका ही है। समझ में आया? सच्ची रीति से मेरी भावना तो आत्मा में है, कहते हैं। यह भाव आओ, परन्तु इसकी मेरी भावना नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

श्लोक-२९९

(अनुष्टुप्)

आत्माराधनया हीनः सापराध इति स्मृतः।
अहमात्मान-मानन्द-मन्दिरं नौमि नित्यशः।।२९९।।

(वीरछन्द)

निज आराधन रहित जीव ही सापराध कहलाते हैं।
इसीलिए हम आनन्द मंदिर आतम को नित नमते हैं॥२९९॥

[श्लोकार्थः—] आत्मा की आराधना रहित जीव को सापराध (-अपराधी) माना गया है। (इसलिए) मैं आनन्दमन्दिर आत्मा को (आनन्द के गृहरूप निजात्मा को) नित्य नमन करता हूँ।२९९।

श्लोक - २९९ पर प्रवचन

२९९ (कलश)

आत्माराधनया हीनः सापराध इति स्मृतः।
अहमात्मान-मानन्द-मन्दिरं नौमि नित्यशः।।२९९।।

नित्य मैं नमन करता हूँ। आहाहा! मुनि की शैली। अरे! भगवान! जो अपना ही अनादर करे, वह फिर ऐसे सन्तों का आदर कहाँ से करेगा?

श्लोकार्थ : आत्मा की आराधना रहित जीव को... नित्यानन्द स्वभाववाला प्रभु, ऐसी आत्मा की आराधना, सेवा, उपासनारहित जीव को **सापराध (-अपराधी) माना गया है।** आहाहा! राग की सेवा करनेवाले को तो अपराधी कहा गया है। आहाहा! आत्मा की आराधना। यह देवी और देव की आराधना करते हैं न? वह तो कहीं गयी। परन्तु तीन लोक के नाथ की आराधना, वह भी व्यवहार में जाती है। भगवान स्वयं पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें आनन्द का नशा चढ़ता है, ऐसा प्रभु! उसकी सेवारहित और राग की सेवासहित है, वह अपराधी है, गुनहगार है। उसे चार गति में दण्ड-फल मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? **माना गया है।** अपराधी गिनने में आया है।

(इसलिए) मैं... इस कारण से मैं। इस प्रकार मुनि ने अपनी बात साथ ही डाली और आनन्द के आदर करनेवाले को भी ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **मैं आनन्दमन्दिर आत्मा को...** लो! मैं तो अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द मन्दिर हूँ। यह आत्मा। आनन्द मन्दिर आत्मा। जिसमें प्रवेश करने से, उस भगवान आनन्द मन्दिर में जाने से आनन्द का देव प्राप्त होता है। जिसमें आनन्द का देव आत्मा, उसकी प्राप्ति हो। आहाहा! समझ में आया? लो, यह मन्दिर में जाते हैं न? छह आवश्यक आते हैं न? देवपूजा, गुरुसेवा इत्यादि। कहते हैं कि मैं तो आनन्द मन्दिर में जाता हूँ।

आनन्दमन्दिर आत्मा को (आनन्द के गृहरूप निजात्मा को)... वापस ऐसा **नित्य नमन करता हूँ।** कोई भी समय मेरे पूर्णानन्द के आदर बिना का है नहीं। सम्यग्दृष्टि को कोई भी क्षण पूर्णानन्द के नाथ आत्ममन्दिर के आदर बिना जाता नहीं है। आहाहा! और यदि आत्मा का आदर भूलकर पर का आदर हो गया तो मिथ्यादृष्टि हो जाए। गजब बातें, भाई! यहाँ आत्ममन्दिर (कहते हैं) और फिर वापस मन्दिर बनाना और स्वाध्याय मन्दिर बनाना। ऐई! देवीलालजी पण्डित कहलाते हैं। वे फिर स्वाध्याय मन्दिर बनाते हैं। एक मन्दिर हुआ, और स्वाध्याय मन्दिर (बनाते)। बातें बड़ी-बड़ी करते हो और फिर वापस ऐसे धन्धे करते हो। भाई! वह तो उसके कारण से होता है। धर्मी जीव का शुभविकल्प निमित्तरूप कहलाता है। बाकी ऐसी बात है। नित्य आनन्द के घर में जाता हूँ, ऐसा कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)